10

उपनिवेशवाद

15 अगस्त सन् 1947 हमारे लिए ऐतिहासिक दिन था। इसी दिन भारत देश ब्रिटिश हुकूमत से आजाद हुआ था। 4 जुलाई सन् 1776 को अमेरिका ब्रिटेन से स्वतंत्र हुआ था। अतः वह प्रतिवर्ष 4 जुलाई को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाता है। दुनिया के अधिकांश देश इसी तरह किसी–न–किसी दिन अपनी आजादी दिवस के रूप में मनाते हैं। हम नीचे दिए गए नक्शे में देख सकते हैं कि यूरोप के अलावा अन्य सभी महाद्वीपों के अधिकांश देश पिछले 200 वर्षों में किसी–न–किसी दूसरे देश के अधीन रहे हैं।

मानचित्र 10.1 सन् 1750–1914 विश्व के देश जो किसी यूरोपीय देश के अधीन थे

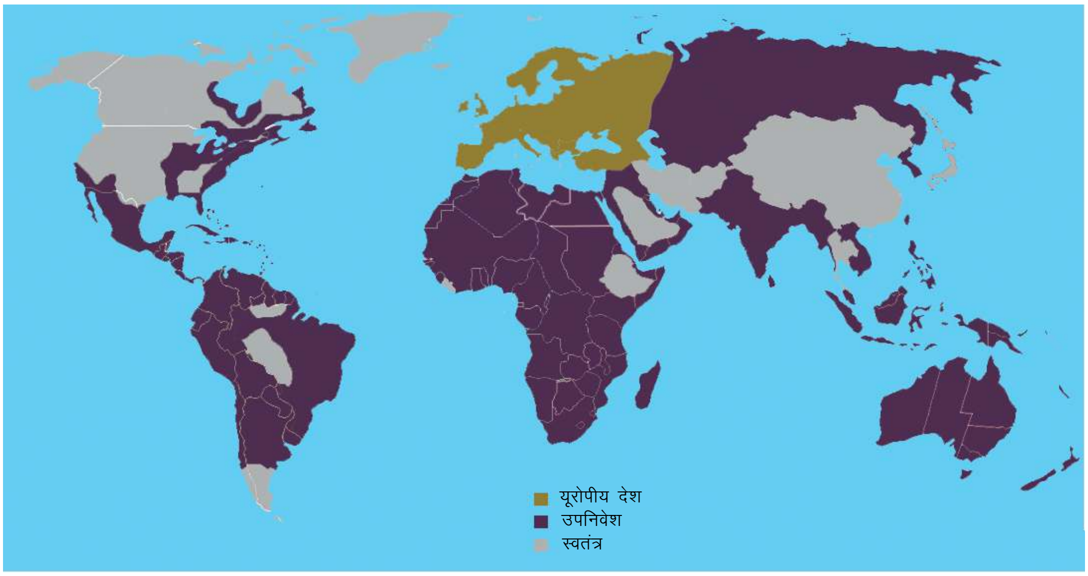

इस मानचित्र को देखने से एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि यूरोप के देशों ने एशिया, अफ्रीका एवं अमेरिका के कई देशों को अपने अधिकार में रखा था।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि यूरोप के देशों ने हजारों किलोमीटर दूर स्थित दूसरे देशों पर कैसे कब्जा किया होगा? वे ऐसा किस उद्देश्य से कर रहे थे? शेष दुनिया के देश क्या कर रहे होंगे जब यूरोप के देशों ने उन पर कब्जा किया? यूरोपीय देशों के शासन का उनके अधीनस्थ देशों पर क्या प्रभाव पड़ा? वे स्वतंत्र कैसे हुए?

इन सारे प्रश्नों को समझने के लिए समाजविज्ञान की दो अवधारणाओं 'साम्राज्यवाद' और 'उपनिवेशवाद' को समझना होगा। जब कोई देश किसी दूसरे देश पर अपना नियंत्रण स्थापित करता है और उस देश के संसाधनों का अपने फायदे के लिए उपयोग करता है तो वह देश साम्राज्यवादी देश और अधीनस्थ देश उसका उपनिवेश कहलाता है। उदाहरण के लिए भारत पर ब्रिटेन का राज्य था तो ब्रिटेन साम्राज्यवादी देश और भारत उसका उपनिवेश था। आमतौर पर साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों के समाज और अर्थव्यवस्था को इस तरह पुनर्गठित करते हैं कि उनका दोहन हो सके।

इसका परिणाम यह होता है कि उपनिवेश में गरीबी बढ़ती है और वहाँ विकास के लिए पूँजी की कमी हो जाती है। इस तरह उपनिवेशों में विकास की प्रक्रिया में बाधा आ जाती है। यही नहीं, साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों के लोगों के सोच–विचार पर भी हावी होते हैं ताकि उपनिवेश के लोग अपनी परिस्थितियों को स्वीकार करने लगें। समय के साथ जब वे उपनिवेशी समस्याओं का सामना करने लगते हैं, तो अपने अनुभवों से सीखकर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने लगते हैं।

पिछले 300 वर्षों का विश्व इतिहास कुछ विकसित देशों के द्वारा एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका महाद्वीपों के देशों को अपना उपनिवेश बनाने तथा इन उपनिवेशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का इतिहास है। इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभावों को दुनिया के स्तर पर समझना है। पहले हम दक्षिण अमेरिका में यूरोपीय वर्चस्व के बारे में पढ़ेंगे। उसके बाद दक्षिण पूर्व एशिया, चीन, भारत और अफ्रीका में उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के बारे में तुलनात्मक रूप से समझने की कोशिश करेंगे।

विश्व के मानचित्र में तालिका में दिए गए देशों को पहचानिए और लिखिए कि वे किन महाद्वीपों में हैं। अनुमान से लिखिए कि इनमें कौन से साम्राज्यवादी देश और कौन उपनिवेश थे।

देश	महाद्वीप	साम्राज्य–उपनिवेश
भारत		
चीन		
अर्जेन्टीना		
पुर्तगाल		
ब्राजील		
इंडोनेशिया		
फ्रांस		
इंग्लैंड (ब्रिटेन)		
जापान		
दक्षिण अफ्रीका		
मैक्सिको		
नाईजीरिया		
जर्मनी		
लाओस		
वियतनाम		
चिली		

मानचित्र में अटलांटिक महासागर, प्रशान्त महासागर, हिन्द महासागर तथा भूमध्य सागर को पहचानिए।

10.1 दक्षिण अमेरिका में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

'नई धरती' की खोज

भारत की खोज में कोलंबस नामक नाविक स्पेन से तीन जहाजों के साथ निकला और सन् 1492 में अटलांटिक महासागर पार करके अमेरिका के निकट के द्वीप समूहों पर पहुँचा। कोलंबस ने सोचा कि वह भारत पहुँच गया। उसने

उन द्वीपों को 'इन्डीज' और वहाँ के लोगों को 'इन्डियन' कहा। आज हम इन द्वीपों को 'वेस्ट–इंडीज' के नाम से जानते हैं। समय के साथ यह पता चला कि यह एक नया महाद्वीप है भारत नहीं है, लेकिन फिर भी अमेरिका के मूल निवासियों को आज भी 'रेड इन्डियन' कहा जाता है।

10.1.1 दक्षिण अमेरिका पर कब्जा

कुछ वर्षों में यूरोपीय नाविकों ने पूरे अमेरिका महाद्वीप के तट की यात्राएँ कर डाली। इस महाद्वीप को "अमेरिका" नाम दिया गया। इस "नई भूमि" पर कब्जे की संभावना ने स्पेन के पेशेवर सेनापतियों को आकर्षित किया। ये पेशेवर सेनापति यश और धन कमाने के लिए अपनी सेना तैयार करके स्पेन के राजा से अमेरिका में उनकी ओर से नए क्षेत्र जीतने की अनुमति लेते थे। वे अमेरिका में अपने लिए जमीन के बड़े टुकड़े घेरना चाहते थे ताकि वहाँ खेती व पशुपालन किया जा सके। उन दिनों यूरोप में आबादी तेजी से बढ़ रही थी और जमीन की कमी थी। ऐसे में एक पूरा महाद्वीप बसने के लिए मिले तो क्या बात थी!

अमेरिका का एक और आकर्षण था। उन दिनों यूरोप में सोना–चाँदी का अभाव था और यह अफवाह फैली कि अमेरिका में इनके बेशुमार भण्डार और खानें हैं। योद्धा और सेनापति सोना–चाँदी लूटने की आशा में अमेरिका की ओर निकल पड़े।

जमीन और सोना–चाँदी के अलावा इन योद्धाओं के लिए एक और प्रबल प्रेरणा थी। वे मानते थे कि वे अमेरिका के असभ्य लोगों के बीच ईसाई धर्म फैलाएँगे। रोमन कैथोलिक चर्च ने योद्धाओं के साथ कई विशेष पादरियों को भी अमेरिका भेजा ताकि वे वहाँ के लोगों का धर्मांतरण कर सकें।

शुरू में इंग्लैंड के लोग भारत में किन उद्देश्यों से आए थे? उनके और स्पेन के लोगों के अमेरिका जाने के उद्देश्यों की तुलना करें।

उस समय अमेरिका में दो महान साम्राज्य थे– एक था 'इंका साम्राज्य' जो एंडीज पर्वतमाला के दक्षिण में था यह वर्तमान में पेरु एवं चिली देश के हिस्से हैं। दूसरा राज्य था एजटेक जो मेक्सिको में स्थित था। बाकी देशों से संपर्क नहीं होने के कारण वहाँ का तकनीकी विकास अलग था। वहाँ न लोहे का उपयोग होता था, न पहिये वाली गाडियाँ थीं, न घोड़े, न गाय–बैल, न तोप–बन्दूक। वे लोग हल चलाकर खेती नहीं करते थे और ज्यादातर कुदाल से खेती करते थे और इससे विभिन्न तरह के अनाज जैसे मक्का और सब्जियाँ, जैसे –मिर्ची, टमाटर, कद्दू, आलू इत्यादि उगाते थे। लोग छोटे गाँवों में रहते थे जहाँ आमतौर पर सभी लोग एक दूसरे के रिश्तेदार होते थे। गाँव के लोगों को राजाओं व आभिजात्य लोगों के मांगने पर बेगार करनी पड़ती थी। वहाँ पुजारियों का काफी महत्व था। वे सूरज आदि की पूजा करते थे और समय–समय पर जानवर व मनुष्य की बलि चढ़ाते थे।

कोर्टेस नामक सेनापति के साथ स्पेन से आए सैनिकों ने एजटेक साम्राज्य को सन् 1519 में ध्वस्त कर अपने कब्जे में ले लिया। एजटेक राजा मेक्सिको के एक दुर्गम क्षेत्र के किले में रहता था। उसने कोर्टेस और उसके सैनिकों को बिना रोके यह सोचकर आने दिया कि ये लोग उससे शान्तिपूर्वक मिलने व बातचीत करने आ रहे हैं। एजटेक के लोगों का विश्वास था कि उनके कुछ देवता पूर्वी समुद्र से आएँगे और वे यही मानते रहे कि स्पेन के लोग ही देवता हैं। इस सोच के कारण भी उन्होंने कोर्टेस को रोकने का प्रयास नहीं किया। राजा ने कोर्टेस का स्वागत किया किन्तु अचानक कोर्टेस ने राजा को उसके ही महल में बन्दी बना लिया और भयंकर लूटपाट और मारकाट मचायी। स्पेनी लोगों के साथ आई चेचक जैसी महामारी भी अपना काम कर गई, एजटेक के सैनिक बीमारियों के कारण मारे गए या लड़ने की स्थिति में नहीं रहे। इस युद्ध में कोर्टेस की जीत के कई कारण रहे– स्पेनियों के हथियार, खास कर घोड़े, बंदूकें और तोपें एजटेक तीरों और भालों से ज्यादा असरदार थे। एजटेक राज्य को स्पेन का एक प्रांत घोषित किया गया। ज्यादातर नागरिकों को जबरदस्ती ईसाई धर्म में दीक्षित किया गया और उनसे बेगार करवाई

चित्र 10.1 : हेर्नण्डो कोर्टेस

जाने लगी। लगभग इसी कहानी को दक्षिण अमेरिका के इंका साम्राज्य की राजधानी में सन् 1533 में पिज्जारो द्वारा दोहराया गया। स्पेन के राजा ने इन दोनों राज्यों को अपना नया प्रांत घोषित कर वहाँ पर अपने विश्वासपात्र गवर्नर की नियुक्ति कर दी।

पुर्तगाल के नाविक भी कोलंबस की तरह भटकते हुए ब्राजील के तट पर पहुँचे। लेकिन ब्राज़ील प्रदेश में कोई स्थानीय राज्य नहीं था, वहाँ केवल कई शिकारी कबीले रहते थे। पुर्तगालियों ने उस इलाके पर अपना कब्जा जमा लिया और स्पेनियों की ही तरह वहाँ अपने लोगों को बसाकर खेती करने का प्रयास किया।

स्पेन के चन्द लोग कैसे इतने बड़े राज्यों पर इतनी जल्दी और आसानी से विजयी हुए होंगे– क्या आपको कोई कारण समझ में आ रहा है? इसी तरह इंग्लैंड के लोग मुगल साम्राज्य पर इतनी आसानी से विजयी क्यों नहीं हुए होंगे?

10.1.2 विजय, उपनिवेश और दास–व्यापार

अब स्पेन के पास अमेरिका में स्पेन की भूमि से कई गुना भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन कब्जे में था। एक तरफ इस क्षेत्र मे जंगलों को साफ कर खेती करने की कोशिश की जाने लगी। दूसरी ओर इस भू–भाग में फैली खनिज संपदाओं, खासकर सोने और चाँदी का खनन करने की कोशिश शुरू हुई। इन प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए स्पेनी विजेताओं ने स्पेन और यूरोप के अन्य हिस्सों से लोगों को आकर बसने के लिए प्रोत्साहित किया।

जल्दी ही अमेरिका के पूर्वी तट पर बहुत सी यूरोपीय बस्तियाँ बसने लगीं। इन यूरोपीय लोगों में ज्यादातर लोग छोटे किसान एवं खेतिहर मजदूर थे जो बेहतर जिन्दगी की तलाश में अमेरिका आए थे। जंगल को साफ कर उसे खेती लायक बनाने और खेती करने के लिए मानव श्रम की आवश्यकता थी। इसके लिए अमेरिका के मूल निवासियों से बेगार करवाई जाने लगी। प्रत्येक गाँव को अपने युवाओं को स्पेनी लोगों के खेतों या खदानों पर काम करने के लिए कई महीनों के लिए भेजना पड़ता था।

दुर्भाग्यवश ज्यादातर स्थानीय निवासी धीरे–धीरे बेगार, युद्ध और महामारियों की चपेट में आकर मारे जा रहे थे। चूँकि अमेरिका अब तक बाकी देशों के संपर्क में नहीं था। वहाँ के लोग एशिया और यूरोप की बीमारियों के आदी नहीं थे और उनका प्रतिरोध करने की शक्ति उनमें नहीं थी। इस कारण चेचक जैसी बीमारी वहाँ महामारी बनकर विनाश लीला कर गई। मेक्सिको की आबादी सन् 1519 में लगभग ढ़ाई करोड़ थी। यह सन् 1568 तक कम होकर 26 लाख रह गई। इसी तरह पेरू की आबादी सन् 1532 में 90 लाख से कम होकर सन् 1570 तक 13 लाख हो गई। यानी जहाँ 100 लोग रहते थे वहाँ केवल 10–15 लोग ही बचे।

मानचित्र 10.2 : लैटिन अमेरिका

लैटिन अमेरिका नाम कैसे पड़ा?

अमेरिका महाद्वीप के दक्षिणी भाग पर मुख्य रूप से स्पेन, पुर्तगाल और फ्रांस देशों का आधिपत्य स्थापित हुआ था जबकि उत्तरी अमेरिका पर इंग्लैंड का राज्य बना। स्पेन, पुर्तगाल और फ्रांस की भाषाएँ मूलतः लैटिन भाषा से निकली हैं अतः इन्हें 'लैटिनो' भाषा कहते हैं। चूंकि दक्षिणी अमेरिका लैटिनो भाषायी संस्कृतियों के प्रभाव क्षेत्र में था, इसलिए इसे लैटिन अमेरिका कहा जाता है। इसके विपरीत उत्तरी अमेरिका पर अंग्रेजी का वर्चस्व था।

इस बड़े भू–भाग पर मानव श्रम की पूर्ति के लिए अफ्रीका से बड़े पैमाने पर दासों को लाया जाने लगा। जैसे–जैसे यूरोपीय लोग अमेरिका में नए इलाकों को अपने अधीन करते गए वैसे–वैसे अफ्रीका से दासों के व्यापार मेंअधिक वृद्धि हुई। अटलांटिक दास व्यापार सन् 1451 से सन् 1870 तक चला। इस बीच लगभग एक करोड़ अफ्रीकी गुलाम बलपूर्वक अमेरिका लाए गए। इनमें से स्पेनिश अमेरिका में 16 लाख, ब्राज़ील में 36 लाख, संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटिश उपनिवेशों में 20 लाख और फ्रांसीसी कैरिबियाई क्षेत्र में 16 लाख गुलाम लाए गए।

चित्र 10.2 चांदी का खनन सन् 1596 का चित्र

इस प्रकार अमेरिका महाद्वीप में एक मिश्रित आबादी रहने लगी जिसमें मूलनिवासी इन्डियन, अफ्रीकी तथा यूरोपीय लोग सम्मिलित थे। कई यूरोपीय लोगों ने अपनी नस्लीय पहचान को बनाए रखने का प्रयास किया, मगर समय के साथ लोगों की संस्कृति में परस्पर आदान–प्रदान होने लगा। वहाँ के मूल निवासियों ने प्रायः कैथोलिक ईसाई धर्म को अपना लिए हालाँकि कई मूलनिवासियों ने अभी भी अपनी पारंपरिक रीतियों को बनाए रखा।

स्पेन के शासकों द्वारा अमेरिका के कब्जे वाले भू–भाग को बड़ी–बड़ी जागीरों में बांटा गया। इन जागीरों पर स्थानीय निवासियों को बेगार करनी पड़ती थी। ऐसी जागीरों को राजा विभिन्न विजेता सेनापतियों या स्पेन के उच्च वर्ग के लोगों को उपभोग करने के लिए देते थे। इन जागीरों पर उनके मालिक अफ्रीकी दासों, स्थानीय जनजाति एवं स्पेन से आए छोटे किसानों और चरवाहों से खेती करवाने लगे। अफ्रीकी दासों और स्थानीय जनजातियों की मेहनत से इस भू–भाग पर खेती और पशुपालन का खूब विकास हुआ। जल्दी ही यह भूभाग यूरोप को शक्कर और माँस का निर्यात करने लगा।

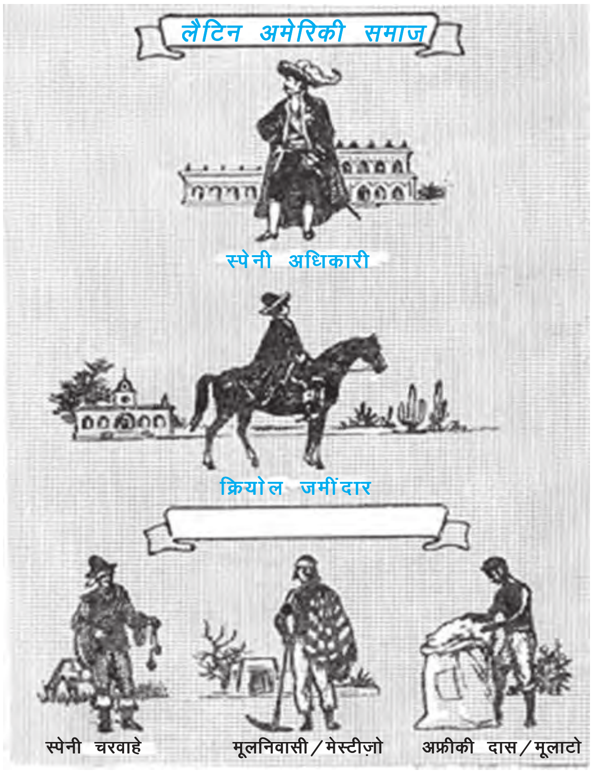

चित्र 10.3 : लैटिन अमेरिकी समाज

कृषि के अलावा इस भूभाग पर खनन उद्योग का भी खूब विकास हुआ। चाँदी की बहुत बड़ी–बड़ी खानें खोली गईं जिनसे व्यापक पैमाने पर चाँदी निकाली जाने लगी। इसके अलावा ताँबा और टीन का भी खनन काफी तेजी से बढ़ा। इन खानों के आसपास बड़े–बड़े शहर बसने लगे।

10.1.3 शासन एवं सामाजिक संरचना

स्पेनी साम्राज्य का नियंत्रण स्पेन स्थित परिषद् द्वारा होता था। यह परिषद् स्पेन से अमेरिका के प्रशासन के लिए उच्चतम अधिकारियों को भेजती थी। ये स्पेनी मूल के होते थे जो स्पेन के आभिजात्य वर्ग के सदस्य होते थे।

इसके बाद अमेरिकी उपनिवेशी समाज में वे लोग आते

थे जो मूलतः स्पेनी थे लेकिन अमेरिका में बस गए थे और जिनका जन्म लैटिन अमेरिका में हुआ था। इसमें स्पेनी मूल के जमींदार एवं अन्य सामाजिक समूह आते थे। इस समूह को क्रियोल (Creole) कहा जाता था। ये लोग उपनिवेशी शासन व्यवस्था में राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण पदों तक नहीं जा सकते थे। वे मुख्यतः खेती, पशुपालन, व्यापार, छोटे कुटीर उद्योग–धंधे आदि करते थे।

इसके नीचे मेस्टीज़ो (Mestizo) होते थे। यह समूह यूरोपीय एवं अमेरिकी मूलनिवासियों की मिश्रित सन्तानों का था। इसके भी नीचे मुलाट्टो (Mulatto) होते थे जो यूरोपीय एवं अफ्रीकी दासों के मिश्रित समूह थे। इनका काम मुख्य रूप से मजदूरी करना था।

इस सामाजिक संरचना में सबसे नीचे अमेरिकी मूलनिवासी आते थे। इन्हें शासन व्यवस्था में किसी भी तरह का अधिकार नहीं था। उन्हें सरकार को भारी लगान देने के साथ–साथ जमींदारों के खेतों तथा खदानों में बेगारी करनी पड़ती थी।

इनके नीचे अफ्रीकी दास होते थे जिन्हें तरह–तरह के शारीरिक श्रम के काम करने पड़ते थे। उनके कोई अधिकार नहीं थे और उनके मालिक उनसे मनमाना व्यवहार करते थे।

जो लोग स्पेन से आकर अमेरिकी उपनिवेशों पर हुकूमत चलाते थे उनसे उपनिवेश के हर तबके के लोग दुखी थे। स्पेन से कुछ समय के लिए आए लोग तेजी से पैसे कमाकर स्वदेश लौटने की कोशिश में रहते थे और अमेरिका में रहने वाले स्पेनी या अफ्रीकी या मूल निवासियों की समस्याओं पर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। क्रियोल समूह के लोग धनी और शिक्षित थे वे बाकी उपनिवेशी समाज का नेतृत्व कर रहे थे।

क्रियोल लोगों को स्पेनी उच्च अधिकारियों से क्या शिकायतें हो सकती थीं?

अफ्रीकी दास और अमेरिकी मूलनिवासी आदि को शासन में भागीदारी क्यों नहीं दी जाती होगी? क्या आप इसका कोई कारण सोच सकते हैं?

10.1.4 स्पेन द्वारा अमेरिकी उपनिवेशों का दोहन

हमने पढ़ा कि लैटिन अमेरिकी देशों पर शासन करने का अधिकार स्पेन में स्थित परिषद् के पास रहता था। परिषद् का उद्देश्य था इस भू–भाग के प्राकृतिक संसाधनों का व्यवस्थित दोहन जिससे स्पेन को ज्यादा–से–ज्यादा फायदा हो सके।

अमेरिका में किसान और जमींदार व्यापारिक फसल जैसे गन्ना या कपास उत्पादन करते थे। जब किसान अपनी फसल का उत्पादन कर लेते थे तो उन्हें अपनी फसलों को केवल परिषद द्वारा निर्धारित स्पेनी व्यापारियों को ही सस्ते में बेचना होता था। इससे खेती से होने वाले फायदे की रकम किसानों के पास जमा नहीं हो पाती थी। इसके कारण किसान खेती की उन्नति में पूँजी नहीं लगा पाते थे। फलतः इस भू–भाग में कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हो पाया।

इसी तरह लैटिन अमेरिकी खदानों से निकलने वाले सोने–चाँदी और धातुओं पर राजा का अधिकार माना जाता था और वह जहाजों के द्वारा स्पेन भेज दिया जाता था। लैटिन अमेरिका की खदानों से निकली धातु का उपयोग स्पेन में होता था। उपनिवेशों में किसी भी तरह के उद्योग धंधों का विकास होने नहीं दिया गया। कोशिश यह रहती थी कि सभी वस्तुओं की आपूर्ति स्पेन से की जाए।

कल्पना करें कि आप एक अमेरिकी मूलनिवासी हैं। कल्पना करें कि आप एक स्पेनी पशुपालक हैं जो व्यापारिक उद्देश्य से पशुपालन करते हैं। कल्पना करें कि आप अफ्रीकी दास हैं जो स्पेनी जमींदारों के खेतों पर काम करते हैं। इन तीनों रूपों में आपको स्पेन के शासन से किन–किन बातों पर शिकायत होती?

10.1.5 स्पेनी उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

यूं तो स्पेनी हुकूमत के खिलाफ कई संघर्ष और विद्रोह होते रहे, खासकर मूल निवासियों व अफ्रीकी दासों द्वारा, लेकिन वे असफल रहे। इस बीच उपनिवेशों के सभी तबके के लोगों को स्पेन के शासन से परेशानी बढ़ने लगी। लैटिन

अमेरिका में रहने वाले यूरोपीय मूल के लोग नए लोकतांत्रिक व राष्ट्रवादी विचारों से परिचित थे। सन् 1776 की अमेरिकी क्रांति और सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति से लैटिन अमेरिका के देश भी प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी आजादी के लिए नई कोशिश शुरू की।

हैती – लैटिन अमेरिका में सबसे पहला सफल विद्रोह फ्रांस के एक उपनिवेश, हैती द्वीप में सन् 1791 ई. में हुआ। फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरित होकर करीब एक लाख अफ्रीकी दासों ने विद्रोह कर दिया। एक भूतपूर्व गुलाम, तोसां ले ओवरचुर (Tousaint L'Overture) ने विद्रोही सेना का सफल नेतृत्व किया। इसके बाद दास प्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया गया और सभी दासों को मुक्ति दी गई। सन् 1802 में हैती एवं फ्रांस के बीच समझौता हुआ। लेकिन नेपोलियन के अधिकारियों ने तोसां ले ओवरचुर को धोखे से गिरफ्तार कर लिया और उसे बंदी बनाकर फ्रांस भेज दिया जहाँ उसका देहांत हो गया। फिर भी लोगों ने संघर्ष जारी रखा और सन् 1804 में हैती ने अपने आप को मुक्त कर लिया और एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। यह विश्व इतिहास का पहला सफल दास विद्रोह था।

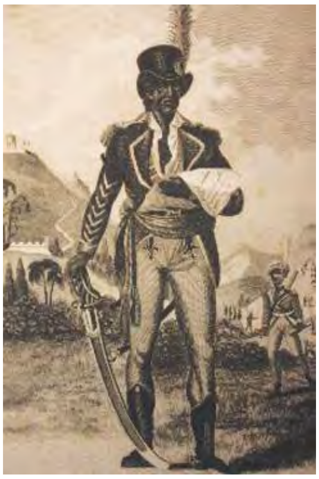

चित्र 10.4 : तोसां ले ओवरचुर

लैटिन अमेरिका का स्वतंत्रता संघर्ष– हैती के विद्रोह के बाद स्पेनी लैटिन अमेरिका में भी सन् 1811 से विद्रोह शुरू हुआ जिसका नेतृत्व ज्यादातर क्रियोल समूह के लोगों ने किया। इनमें से प्रमुख थे सीमोन बॉलिवार एवं जोस मार्टिन। आपको याद होगा, क्रियोल समूह लैटिन अमेरीका में सबसे कम शोषित समूह था। बहुत से क्रियोल यूरोपीय विश्वविद्यालयों से पढ़ाई करके आए हुए थे और आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों से परिचित थे।

सीमोन बॉलिवार ने क्रियोल, अफ्रीकी दासों एवं छोटे किसानों की एक सेना बनाई और स्पेन के खिलाफ सन् 1811 में बगावत शुरू कर दी। इस सेना के साथ–साथ बॉलिवार ने स्पेनी शासन के खिलाफ अनवरत युद्ध किया जिनमें कई बार उसकी हार हुई। लेकिन सन् 1819 में वर्तमान कोलम्बिया को उसने स्पेनी शासकों से जीत लिया। सन् 1821 में वर्तमान वेनेजुएला भी मुक्त हो गया। इसके बाद वह दक्षिण में एक्वाडोर पहुँचा। जहाँ वह दूसरे लैटिन अमेरिकी नेता जोस मार्टिन की सेना के साथ हो गया।

लैटिन अमेरिका के दक्षिणी हिस्से जिसको हम वर्तमान में अर्जेन्टीना कहते हैं, में विद्रोह का नेतृत्व जोस मार्टिन ने किया। उन्होंने अर्जेन्टीना और चिली को स्वतन्त्र करा दिया। सन् 1824 में बॉलिवार और मार्टिन की संयुक्त सेना ने पेरु से भी स्पेनी सेना को निकाल बाहर किया। उसी समय ब्राज़ील में भी लोगों ने पुर्तगाल से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। इस तरह पूरा लैटिन अमेरिका यूरोपीय शासन से स्वतंत्र हो गया। सीमोन बॉलिवार पूरे दक्षिणी अमेरिका के क्रांतिकारी मुक्तिदाता के रूप में जाने जाते हैं। जहाँ–जहाँ उनकी सत्ता स्थापित हुई वहाँ दास प्रथा और बेगार प्रथा को समाप्त किया गया जिससे अफ्रीकी दास और इंडियन दोनों उनकी क्रांति के साथ हो गए। उनका वादा था कि बड़ी जमींदारियों को तोड़कर छोटे किसानों में जमीन बांटी जाएगी लेकिन यह क्रियोल जमींदारों के विरोध के चलते संभव नहीं हो पाया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के किस नेता की आप सीमोन बॉलिवार से तुलना कर सकते हैं?

हैती के स्वतंत्रता संघर्ष और दक्षिण अमेरिका के संघर्ष में क्या समानता और अन्तर आपको दिखता है?

10.2 एशिया में उपनिवेशवाद

एशियाई सूती और रेशमी कपड़े, मसाले आदि खरीदने के लिए यूरोप से व्यापारी एशिया आते थे। पश्चिमी यूरोप के व्यापारी भारत पहुँचने के लिए नए समुद्री मार्ग की खोज में लग गए और अंततः पुर्तगाल का नाविक वास्कोडिगामा जहाज से अफ्रीका का चक्कर लगाकर सन् 1498 में भारत पहुँचा। इससे पहली बार यूरोप से भारत और चीन के लिए समुद्री मार्ग से आना–जाना संभव हो गया। यूरोपीय नाविक जब अमेरिका गए थे तो उन्हें सैन्य दृष्टि से किसी

शक्तिशाली राज्य का सामना नहीं करना पड़ा था। लेकिन तब एशिया में कई ऐसे राज्य थे जो उस समय के किसी भी यूरोपीय साम्राज्य से बड़े और सैन्य दृष्टि से ज्यादा मजबूत थे। यूरोपीय शक्तियाँ एशिया के इन शक्तिशाली राजाओं को सीधे युद्ध में हराने में सक्षम नहीं थीं।

चित्र 10.5 : अपनी सेना के साथ दुर्गम एंडीज पर्वत पार करते सीमोन बॉलिवार

हिन्द महासागर के तटीय प्रदेशों में पुर्तगालियों ने कई बन्दरगाहों पर (जैसे भारत में गोवा, पश्चिम एशिया में हरमुज एवं दक्षिण पूर्व एशिया में मलक्का) अपने सैन्य व व्यापारिक अड्डे स्थापित किए। फिर उन्होंने हिन्द महासागर पर चलने वाले व्यापारी जहाजों पर लगातार हमला किया और उन्हें कर चुकाने पर विवश किया। उन्होंने इस तरह एक समुद्री साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। यह व्यवस्था तब जाकर टूटी जब ब्रिटेन, हॉलैंड और फ्रांस के व्यापारियों ने हिन्द महासागर में अपने व्यापारिक अड्डे बना लिए और पुर्तगाल के आधिपत्य को चुनौती दी।

10.2.1 इंडोनेशिया का हॉलैंड द्वारा उपनिवेशीकरण

पूरब के देशों से व्यापार में मुनाफे के लिए पुर्तगाल के साथ–साथ अन्य यूरोपीय देश जैसे फ्रांस, इंग्लैंड और हॉलैंड की व्यापारिक कंपनियाँ भी आगे आने लगीं। हिन्द महासागर में पुर्तगाली वर्चस्व को तोड़ने में हॉलैंड के डच लोगों को सफलता मिली और वे दक्षिण–पूर्व एशिया में अपना उपनिवेश स्थापित करने में सफल रहे। (हॉलैंड या नीदरलैंड के लोगों को डच कहते हैं क्योंकि वे डच भाषा बोलते हैं।)

सन् 1602 में डच लोगों ने एशिया से व्यापार करने के लिए डच ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापित की। हिन्द महासागर के व्यापार पर पुर्तगालियों के नियंत्रण को तोड़ने के लिए इस कंपनी को कई युद्ध लड़ने पड़े। अन्त में उन्होंने इंडोनेशिया के जावा द्वीप के हिस्सों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। याद रहे कि वहीं मलक्का में पुर्तगालियों का ठिकाना था। डच कंपनी ने प्रयास किया कि वह इंडोनेशिया में उगने वाले सारे मसालों के व्यापार पर एकाधिकार जमाए ताकि उसे यूरोप में मनमानी कीमत पर बेच सके और मुनाफा कमा सके। उसका अभी उन द्वीपों पर अपना राज्य स्थापित करने का उद्देश्य नहीं था। 17वीं सदी में जावा द्वीप समूह पर 'मातरम वंश' का शासन था। हालाँकि इस राज्य ने लगातार प्रयास किया कि वह डच कंपनी के ठिकाने को हटाए लेकिन वह असफल रहा और वहाँ एक तरह का दोहरा नियंत्रण बना रहा। जावा द्वीप के कुछ भागों पर डच कंपनी का नियंत्रण था और बाकी पर मातरम सुल्तानों का था। मसालों के व्यापार पर डच कंपनी को कई एकाधिकार व रियायतें मिली हुई थीं।

मसालों तथा गन्ने के उत्पादन को बढ़ाने के लिए डच कंपनी के दबाव में इंडोनेशिया के वन कटे और उनकी जगह खेत और बागान बने जहाँ इनका उत्पादन होने लगा। सन् 1700 तक डचों ने योजनाबद्ध तरीके से मसाले की खेती एवं उसके व्यापार पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया था। अब सिर्फ मसालों के व्यापार पर ही नहीं बल्कि उनके उत्पादन पर भी उनका पूर्ण नियंत्रण था।

सन् 1800 में डच ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर डच सरकार ने इंडोनेशिया का शासन सीधे अपने हाथ में ले लिया और सन् 1830 तक जावा द्वीप पर अपना पूरा अधिकार स्थापित कर लिया। डच सरकार ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए जावा के किसानों को मजबूर किया कि वे कॉफी, रबड़ या गरम मसाले उगाकर शासन को

बहुत ही कम दर पर दें। सरकार ने इन्हें विश्व बाजार में बेचकर भारी मुनाफा कमाया। छोटे किसानों को भी खाद्यान्न की जगह इन फसलों को उगाना पड़ा। परिणामस्वरूप वहाँ खाद्य संकट उत्पन्न हो गया और अकाल की स्थिति पैदा हो गई। इसके खिलाफ बहुत से विद्रोह हुए लेकिन डच शासन ने इन विद्रोहों को कठोरता के साथ दबा दिया। यह परिस्थिति सन् 1870 तक बनी रही।

चित्र 10.6 : जावा में एक चाय बागान

बागान अर्थव्यवस्था

सन् 1870 के बाद इंडोनेशिया में व्यापक पैमाने पर डच पूँजी का निवेश बागान (Plantation) में हुआ। हजारों एकड़ के जंगलों को काटकर उस जमीन पर कोई एक व्यापारिक फसल, जैसे– रबर, कॉफी, चाय, काली मिर्च या गन्ने को ज्यादा मात्रा में उगाये जाने को बागान कहते हैं। उत्पादन को बेचने के लिए तैयार करना बागान के ही कारखानों में होता है। इनमें सैकड़ों मजदूर सपरिवार रहते हैं और दिन–रात काम करते हैं। इन्हें मजदूरी दी जाती है। कई इंडोनेशिया द्वीपों में इस तरह के बागान स्थापित हो गए। इससे इंडोनेशियाई जल्दी ही कोको, चाय, कॉफी, रबड़ इत्यादि वस्तुओं का प्रमुख निर्यातक बन गया। बागानों के मालिक ज्यादातर यूरोपीय होते थे और मजदूर स्थानीय लोग तथा चीन और भारत से लाए गए लोग थे। इस तरह इंडोनेशिया में एक मिश्रित समाज का विकास हुआ।

(हमने बागानों के बारे में कक्षा 6 में पढ़ा है। उसे याद करें)

क्या आपके राज्य में कहीं पर भी इस तरह के बागान हैं?

भारत में कौन सी फसल आज भी ऐसे बागानों में उगाई जाती है और किन राज्यों में? उनके बारे में पता कीजिए।

पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी में एशिया में यूरोपीय देश क्यों अपना साम्राज्य नहीं बना पाए, सोच कर बताएँ।

मसालों के व्यापार पर एकाधिकार के लिए पुर्तगालियों और डचों ने क्या किया?

पुर्तगाली समुद्री साम्राज्य से आप क्या समझते हैं? इसका एशिया के व्यापारियों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

सन् 1830 से 1870 तक डच राज्य की कृषि नीति का इंडोनेशिया के किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा?

बागान के लिए इंडोनेशिया में व्यापक पैमाने पर भूमध्य रेखीय वन काटे गए। इसका वहाँ के लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

10.2.2 चीन में उपनिवेशवाद

19वीं सदी में चीन

जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों के हिसाब से चीन दुनिया का सबसे बड़ा देश था। 17वीं सदी में चीन में मांचू वंश का शासन आया। मांचू शासनकाल में चीन के साम्राज्य की सीमाओं में लगातार विस्तार हुआ और वर्तमान चीन के अलावा मंगोलिया, तिब्बत इत्यादि इस राज्य के हिस्से बन गए। इसके अलावा चीन के शासकों का प्रभाव क्षेत्र कोरिया, वियतनाम आदि देशों तक फैला हुआ था। ये सभी राज्य चीन के सम्राट को 'नज़राना' भेंट करते थे।

मांचू साम्राज्य मुख्यतः एक व्यवस्थित नौकरशाही के द्वारा संचालित था। इसमें नियुक्ति परीक्षा के माध्यम से होती थी। कोई भी इस परीक्षा में शामिल होकर कामयाब हो सकता था। चूँकि इसकी तैयारी काफी कठिन थी, उसमें केवल संपन्न कुल के लोग ही भाग ले पाते थे। चीन का समाज मुख्यतः एक खेतिहर समाज था। ज्यादातर आबादी अपनी आजीविका के लिए खेती पर ही निर्भर थी। राज्य की आय का मुख्य साधन खेती पर लगाया गया लगान था। लगान की वसूली के लिए अधिकारियों का एक विशाल समूह तैनात था।

कृषि के अतिरिक्त चीन में खनन एवं विनिर्माण उद्योग भी विकसित था। चीन में नमक, चाँदी, टीन और लोहे की विस्तृत खानें थीं जहाँ पर चीन के खुद के उपयोग लायक खनिज– अयस्क प्राप्त हो जाता था। चीनी मिट्टी के बर्तन और रेशम के कपड़ों के लिए चीन हमेशा से प्रसिद्ध रहा था। पूरी दुनिया से व्यापारी चीन की इन वस्तुओं को खरीदने के लिए आते थे। चीन में औषधि के रूप में पिया जाने वाला एक पेय पदार्थ–चाय 18वीं सदी में यूरोप में बहुत लोकप्रिय हुआ। इसके बाद चाय के व्यापार के लिए भी चीन में यूरोपीय व्यापारी आने लगे। संक्षेप में अगर कहें तो चीन अपनी जरूरत की सारी वस्तुओं की पूर्ति खुद से ही कर लेता था। यह एक तरह से आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी।

चीन के शासक चीन को बाहरी देशों के किसी भी तरह के प्रभाव से मुक्त रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने विदेशी व्यापार पर कड़ा नियंत्रण स्थापित कर रखा था। विदेशों के साथ व्यापार करने के लिए तीन बंदरगाह अधिकृत कर रखे थे– कैन्टन, मकाओ और निंगबो। यूरोपीय व्यापारी चीन में इन्हीं बन्दरगाहों तक जा सकते थे। यहाँ से चीन के स्थानीय व्यापारी समूह विदेशी माल को पूरे चीन में ले जाते थे और चीन की जो वस्तुएँ उन्हें चाहिए होती थीं उसे विदेशी व्यापारियों को देते थे। इन्हीं बन्दरगाहों में यूरोपीय बस्तियाँ थीं।

अंग्रेजी व्यापार और अफीम युद्ध

यूरोपीय व्यापारी लगातार यह कोशिश कर रहे थे कि उन्हें चीन से व्यापार करने का मौका मिले। चीन के साथ व्यापार करने में भी सबसे पहले डच कंपनी को सफलता मिली। अंग्रेजों ने जब चीन में व्यापार करना शुरू किया तो वे चाहते थे कि उन्हें कुछ रियायतें मिले लेकिन सन् 1830 तक यह संभव नहीं हो सका।

चीन के साथ यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उनके पास चीन में बेचने के लिए कुछ नहीं था। फलतः यूरोपीय व्यापारियों को अपने देश से सोना–चाँदी चीन में लाना पड़ता था। इस तरह व्यापार संतुलन हमेशा चीन के पक्ष में बना रहता था। इस बीच अंग्रेजों का शासन भारत पर बना। अंग्रेज भारत से अफीम खरीदकर चीन में बेचने लगे और इससे मिले धन से वे चीन से चाय, रेशम आदि खरीदने लगे। इस प्रकार उन्हें भुगतान के लिए इंग्लैंड से सोना–चाँदी लाने की जरूरत नहीं रही। उन्होंने कोशिश की कि चीन में ज्यादा–से–ज्यादा अफीम बिके ताकि उन्हें अधिक लाभ हो।

चीन में अफीम का व्यापार अवैध था और मूलतः तस्करी के द्वारा होता था। कैन्टन बंदरगाह से यह अफीम भ्रष्ट चीनी अफसरों व व्यापारियों के द्वारा चीन के अन्य हिस्सों में पहुँचाया जाता था। अफीम के इस व्यापार और अन्दरूनी इलाकों तक इसकी सप्लाई का कुछ ही सालों में यह असर हुआ कि बहुत बड़ी संख्या में चीन के लोग अफीम की लत के शिकार हो गए।

चित्र 10.7 : अफीम युद्ध – एक चीनी चित्र

जब चीनी शासन को इसके बारे में पता चला तो उन्होंने अंग्रेजों के व्यापारिक अधिकार को समाप्त कर दिया और कैन्टन से उन्हें निष्कासित करने का आदेश दिया। इसके कारण सन् 1839–42 में चीन और अंग्रेजों के बीच युद्ध हुआ जिसे 'प्रथम अफीम युद्ध' कहते हैं। इस युद्ध में चीन की पराजय हुई और सन् 1842 में उसे एक अपमानजनक संधि (समझौता) करने पर विवश होना पड़ा। इस संधि को 'नानकिंग की संधि' कहते हैं। इस संधि के अनुसार अंग्रेजों को पूरे चीन में बिना किसी रुकावट के व्यापार का अधिकार मिला। दूसरा, अंग्रेजों को चीनी भूमि पर अपनी व्यापारिक बस्तियाँ बसाने की अनुमति मिली जिसमें अंग्रेजों का अपना कानून चल सकता था। अर्थात् वहाँ चीन की कानून व्यवस्था न चलकर अंग्रेजों का कानून चला। इसके अलावा चीन ने ब्रिटेन को एक बहुत बड़ी राशि हरज़ाने के रूप में दी। इस संधि में एक और शर्त यह जोड़ी गई कि अगर चीन किसी दूसरी यूरोपीय कंपनी को किसी भी तरह की व्यापारिक छूट देगा तो वह स्वतः ही अंग्रेजों को भी मिल जाएगी।

चीन पर बढ़ता हुआ विदेशी प्रभाव

अफीम युद्ध की हार से चीनी सैन्य शक्ति की कमजोरियों के बारे में दुनिया को पता चल गया था। अन्य यूरोपीय शक्तियाँ भी चीन में अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश करने लगीं। सन् 1844 में चीन ने फ्रांस और अमेरिका के साथ भी नानकिंग की संधि की तरह ही संधियाँ कीं। इन संधियों में फ्रांस एवं अमेरिका को भी चीन के शासकों से बहुत सी व्यापारिक रियायतें मिली। कुछ इसी तरह की संधि दूसरे यूरोपीय देशों जैसे रूस, जर्मनी इत्यादि ने भी चीन के साथ कीं। फलस्वरूप चीन के तटीय इलाकों में अलग–अलग देशों के प्रभाव क्षेत्र बन गए।

खुले द्वार की नीति

चीन के पूर्व में एक छोटा सा देश है जापान। सन् 1895 में जापान ने चीन पर आक्रमण किया जिसमें उसकी विजय हुई। अब जापान ने भी चीन को उसी प्रकार की संधि करने को विवश किया जैसे बाकी यूरोपीय देशों के साथ हुई थी। इस तरह चीन का एक बड़ा हिस्सा अलग–अलग यूरोपीय एवं एशियाई साम्राज्यवादी देशों के प्रभाव में आ गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका लंबे समय से चीन में व्यापार कर रहा था। उसे चिंता हुई कि अगर सभी यूरोपीय देशों ने चीन को अपने उपनिवेशों में बाँट लिया तो अमेरिका का व्यापार बंद हो जाएगा। अमेरिका ने इस तरह चीन के भिन्न–भिन्न प्रभाव क्षेत्रों में बांटने का विरोध किया और इसके स्थान पर खुले (मुक्त) द्वार की नीति की घोषणा की। इसका अर्थ था कि सभी देश चीन में व्यापार करेंगे और किसी भी देश का कोई निश्चित प्रभाव क्षेत्र नहीं होगा। थोड़ी न–नुकुर के बाद सारे देशों ने इस संधि को मान लिया।

लेकिन ऐसा क्यों हो रहा था? सन् 1850 तक फ्रांस, जर्मनी एवं अमेरिका में औद्योगीकरण हो चुका था और ये देश सभी नए संभावित बाजारों पर कब्जा करना चाहते थे। हमने ऊपर पढ़ा है कि उस समय चीन की जनसंख्या सबसे ज्यादा थी। बड़ी जनसंख्या का अर्थ बड़ा बाजार भी होता है। इसलिए दुनिया के सारे औद्योगीकृत देश चीन को अपने प्रभाव में लाना चाहते थे। एक दूसरी महत्वपूर्ण वजह थी पूँजी के निवेश के लिए नया क्षेत्र तलाशना। औद्यौगीकरण के पश्चात हुए फायदों से यूरोप में काफी बड़ी मात्रा में पूँजी जमा हो गई थी जिसे वे उपनिवेशों में रेल लाईनें बिछाने व खदान स्थापित करने में लगाना चाहते थे।

चित्र 10.8 यूरोपीय और जापानी साम्राज्यों द्वारा चीन का बँटवारा – एक कार्टून

क्या आप सोचकर बता सकते हैं कि औद्योगिक देश उपनिवेशों में रेल लाईनों और खदानों में ही क्यों धन लगाना चाहते थे? वे कारखाने क्यों नहीं लगा रहे थे?

इस तरह के विदेशी हस्तक्षेप का चीनी समाज और अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

विदेशी नियंत्रण का विरोध

हमने देखा कि यूरोपीय देश चीन पर सीधा कब्जा न करके अपने हित साध रहे थे। चीन का शासन अभी भी चीन के ही सम्राट के हाथों में था। लेकिन बहुत बड़े क्षेत्र पर उसका हुक्म नहीं चलता था। ऊपर से उसे बहुत बड़ी रकम हरज़ाने के रूप में देनी पड़ती थी जिसके कारण आम लोगों पर कर का भार बढ़ता गया।

लगातार विदेशी शक्तियों से हो रही हार एवं अपमानजनक संधियों से चीन के लोग बदलाव की जरूरत महसूस कर रहे थे। इनमें चीन के अधिकारियों का एक समूह भी था। इन लोगों ने आधुनिकीकरण के लिए प्रयास किए। उनका मानना था कि यूरोप के लोग अपनी सेना और हथियारों के कारण जीत रहे हैं तो चीन में भी आधुनिक हथियारों के कारखाने स्थापित किए जाएँ। लेकिन ये प्रयास सफल नहीं हो पाए।

चित्र 10.9 : विदेशी सैनिकों द्वारा बंदी बनाये गए बॉक्सर योद्धा

इन सभी घटनाक्रम ने लोगों में बहुत ही निराशा का भाव फैलाया। चूँकि चीन के शासक वर्ग विदेशियों के खिलाफ कुछ नहीं कर पा रहे थे इसलिए जनता सम्राट के खिलाफ हो गई। सन् 1850 से सन् 1900 के बीच में कई विद्रोह हुए जिन्हें दबाने के लिए चीनी सरकार ने विदेशी मदद ली। गरीब किसानों और मजदूरों ने विदेशियों को दिए गए विशेषाधिकारों के खिलाफ एक गुप्त संगठन बनाया जिसे वे 'बॉक्सर' या 'मुक्केबाज' के नाम से पुकारते थे। उनका मानना था कि खास तरह के शारीरिक व्यायाम से वे अजेय हो जाएँगे और विदेशी गोलियाँ उनके शरीर को भेद नहीं सकेंगी। सन् 1900 में इन विद्रोहियों ने राजधानी बीजिंग के यूरोपीय आबादी वाले हिस्से को घेर लिया। वे लोग 'विदेशी शैतानों' को फाँसी लगाने के नारे लगा रहे थे। इन विद्रोहियों ने कई महीनों तक बीजिंग को घेरे रखा। अगस्त सन् 1900 में एक बहुराष्ट्रीय सेना ने बीजिंग पर आक्रमण करके इन विद्रोहियों को हरा दिया, व्यापक लूटपाट की और लोगों को निर्दयता से मार डाला। चीनी सत्ता इस पूरे मामले में मूक दर्शक बनी रही। बॉक्सर विद्रोह की असफलता के बावजूद राष्ट्रवाद की एक मजबूत धारा का जन्म चीन में हो चुका था। परिणामस्वरूप सन् 1911 में मांचू शासन को खत्म करके चीन में गणतंत्र स्थापित किया गया। लेकिन चीन को वास्तविक स्वतंत्रता सन् 1949 में क्रांति के द्वारा ही मिली।

चीन की किसी और देश के साथ व्यापार करने में कोई दिलचस्पी क्यों नहीं थी?

यूरोपीय देशों ने दुनिया के बाकी हिस्सों को सीधे अपने अधीन कर लिया था लेकिन चीन में उन्होंने ऐसा न करके उनको अलग–अलग प्रभाव के दायरे में लाने की कोशिश की। आपके अनुसार ऐसा क्यों किया गया?

खुले द्वार की नीति से आप क्या समझते हैं? अमेरिका चीन में खुले द्वार की नीति के पक्ष में क्यों था?

10.3 अफ्रीका का उपनिवेशीकरण

हमने अमेरिका में अफ्रीकी दासों को बसाए जाने के बारे में पहले पढ़ा है। यूरोपीय देशों द्वारा अफ्रीका के उपनिवेशीकरण की शुरुआत 19वीं सदी के मध्य में हुई। सन् 1878 तक अफ्रीका की केवल दस प्रतिशत जमीन पर यूरोपीय देशों का कब्जा था, लेकिन महज 36 वर्षों में सन् 1914 तक लगभग सारा महाद्वीप किसी–न–किसी यूरोपीय देश का उपनिवेश बन गया।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि इतने कम समय में यूरोपीय देशों ने अफ्रीका पर कैसे और क्यों कब्जा किया होगा? इसका वहाँ के लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

10.3.1 दास–व्यापार

मानचित्र 10.3 : सन् 1913 में अफ्रीका। इथियोपिया को छोड़कर बाकी सारा महाद्वीप किसी न किसी यूरोपीय देश के अधीन था। इसमें सबसे बड़ा हिस्सा ब्रिटेन का था।

19वीं सदी के मध्य तक अफ्रीका में ज्यादातर हिस्से कबीलाई समूहों से आबाद थे। जीवनयापन के मुख्य साधन पशुपालन, कृषि, जंगल से इकट्ठे किए गए कंद–मूल एवं शिकार होते थे। मध्यकाल में भारत, पश्चिमी एशिया और यूरोप में भी अफ्रीका महाद्वीप दासों की आपूर्ति के मुख्य स्रोत के रूप में जाना जाता था। कबीलाई समूहों के आपसी झगड़े में जो लोग युद्ध बंदियों के रूप में पकड़े जाते थे उनको दास के रूप में बेच दिया जाता था। सन् 1500 के बाद उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में खेती करने के लिए जैसे–जैसे मजदूरों की जरूरत पड़ी वैसे–वैसे अफ्रीका महाद्वीप से दासों का व्यापार भी बढ़ता चला गया। कई यूरोपीय देश इस अति लाभदायक मानव व्यापार में लग गए और करोड़ों अफ्रीकियों को बेचकर खूब मुनाफा कमाया। 450 साल से अधिक चले इस व्यापार को सन् 1800 और सन् 1900 के बीच धीरे–धीरे बन्द किया गया। मजेदार बात यह है कि अब यूरोपीय देश यह कहने लगे कि अफ्रीका में दास व्यापार को खत्म करने के लिए उन्हें अफ्रीका पर अपना राज्य बनाने की जरूरत है। उनमें अब होड़ लग गई कि कौन अफ्रीका में सबसे अधिक जमीन पर कब्जा कर पाता है।

10.3.2 औद्योगिक क्रान्ति, साम्राज्यवादी होड़ और अफ्रीका

ब्रिटेन जैसे प्रारंभिक औद्योगिक देश ने अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल एवं बाजार की तलाश में दुनिया के बड़े हिस्से पर खासकर एशियाई देशों पर कब्जा कर लिया था। जर्मनी, फ्रांस और इटली में औद्योगिक क्रान्ति लगभग 100 साल बाद हुई। इन नव–औद्योगिक देशों के लिए अफ्रीका ही एक ऐसा क्षेत्र था जिस पर कब्जा करने की संभावना थी।

वर्चस्ववादी विचारधाराएँ

यूरोप में इस समय कुछ ऐसे विचार लोकप्रिय हो रहे थे जो यूरोपीय देशों को ज्यादा–से–ज्यादा उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उपनिवेश बनाना राष्ट्रीय शक्ति का पर्याय समझा जाता था और उपनिवेश के प्रसार के लिए काम करना राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति मानी जाती थी। यूरोप में बहुत से लोगों का मानना था कि विश्व में मनुष्यों की कई नस्लें होती हैं और यूरोपीय नस्ल बाकी दुनिया की नस्लों से बेहतर है। यह मानना कि मनुष्यों की नस्लें होती हैं और एक नस्ल को दूसरी नस्ल से बेहतर मानना "नस्लवाद" कहा जाता है। नस्लवादी यह भी मानते थे कि श्रेष्ठ नस्ल के लोगों का कमजोर नस्लों पर राज करना या उनका शोषण करना जरूरी और स्वाभाविक है।

चित्र 10.10 : इस चित्र में नस्लवादी सोच किस प्रकार झलकती है?

अफ्रीका के दक्षिणी इलाकों में, जैसे दक्षिण अफ्रीका, जिम्बाबवे आदि में कई यूरोपीय लोग जाकर बसे। यहाँ तक कि भारत से भी बहुत से लोग वहाँ जाकर बसे। वे सब अपने आप को स्थानीय अश्वेत लोगों से श्रेष्ठ समझते थे और उन्हें कई विशेषाधिकार प्राप्त थे। वे यह प्रयास करते रहे कि विभिन्न मूल के लोगों का आपस में मेलमिलाप न हो और नस्ल आधारित विशेषाधिकार बने रहें। इससे रंगभेद की नीति बनी जो सन् 1994 तक चली।

औपनिवेशिक काल में एक और विचार 'गोरे लोगों का बोझा' बहुत लोकप्रिय हुआ था। इस विचार के अनुसार दूसरे महाद्वीप के लोग पिछड़े हुए हैं इसलिए यूरोप के लोगों का नैतिक दायित्व है कि उन लोगों को सभ्य बनाया जाए। इस विचार के अनुसार यूरोपीय देशों का यह कर्तव्य है कि वे शेष संसार के देशों को ज्ञान और धर्म के मुद्दों पर पथ प्रदर्शित करें। इस विचार से उत्साहित होकर बहुत से लोग अफ्रीका में ईसाई धर्म या फिर आधुनिक विज्ञान व तार्किक सोच के प्रचार–प्रसार के लिए भी गए।

फ्रांस जैसे कई यूरोपीय देश अपने उपनिवेशों में अफ्रीकी लोगों का ऐसा एक समूह तैयार करना चाहते थे जो यूरोपीय भाषा, संस्कृति, धर्म और विचारों को अपना लें और औपनिवेशिक शासन की मदद करें। इस उद्देश्य से अफ्रीका में कई यूरोपीय विश्वविद्यालय और शिक्षण संस्थान खोले गए।

बर्लिन कॉन्फ्रेंस और अफ्रीका का बँटवारा सन् 1884–1885

सन् 1850 के बाद यूरोप के नव औद्योगीकृत देशों ने अफ्रीका में आक्रामक तरीके से काम करना शुरू किया। जल्दी ही यूरोप के कई देश अफ्रीका के अलग–अलग हिस्सों पर कब्जा करने में सफल रहे। लेकिन इससे यह आशंका होने लगी कि यूरोप के देश आपस में ही न लड़ने लगें। आपसी युद्ध के खतरे को टालने के लिए यूरोप के देशों ने अफ्रीका को आपस में बांटने का फैसला किया। जर्मनी की राजधानी बर्लिन में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें

चित्र 10.11 : जर्मन प्रधानमंत्री बिस्मार्क की अध्यक्षता में अफ्रीका का बंटवारा – एक कार्टून

यूरोप के कुल 14 देशों ने भाग लिया। सम्मेलन की सबसे मजेदार बात यह थी कि इस सम्मेलन में अफ्रीका के लोगों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी अफ्रीकी को नहीं बुलाया गया। सम्मेलन में सबसे महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया गया कि अफ्रीका के किसी भी हिस्से पर कोई भी यूरोपीय देश बाकी देशों को बताकर कब्जा कर सकता है। इस तरह से मात्र 30 सालों में ही पूरा अफ्रीका किसी–न–किसी यूरोपीय देश के प्रभाव क्षेत्र में आ गया। हरेक यूरोपीय देश उस भाग का अपने फायदे के लिए ज्यादा–से–ज्यादा दोहन करना चाहता था।

यूरोपीय देश अफ्रीका पर कब्जा क्यों करना चाहते थे?

यूरोपीय देशों के लिए अफ्रीका पर कब्जा करना क्यों आसान था?

चित्र 10.8 और चित्र 10.11 का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

10.3.3 उपनिवेशवाद एवं उसका प्रभाव

एक बार जब यूरोपीय देशों का अफ्रीका पर कब्जा हो गया तो उन्होंने इस भू–भाग को भी अपने हितों के अनुसार बदलना शुरू किया। इन बदलावों ने पूरे अफ्रीका में रहने वाले समुदायों के जीवन पर निर्णायक ढंग से असर किया।

मानचित्र 10.4 : इस नक्शे में क्या कहा जा रहा है?

पशुपालक समाज एवं उपनिवेशवाद : उपनिवेशी शासन से पहले विशाल घास के मैदानों पर 'मसाई' जनजाति के लोग मुख्यतः पशुपालन करते थे। अफ्रीका के औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में ब्रिटेन और जर्मनी ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सीमारेखा बनाकर मसाई प्रदेश के दो टुकड़े कर दिए। इसके पश्चात दोनों ही देशों ने इन घास के मैदानों पर खेती को प्रोत्साहित करना शुरू किया जिससे लगभग 60 प्रतिशत चरागाह पर अब मसाई अपने पशुओं को चराने के लिए नहीं जा सकते थे। मसाई समुदाय धीरे–धीरे उन इलाकों तक सिमट गए जहाँ न तो अच्छा चारा मिलता था और न ही वर्षा होती थी। पहले पशुपालन के द्वारा मसाई लोग किसानों से ज्यादा सुखी सम्पन्न होते थे लेकिन बदलती परिस्थिति में उनकी हालत ज्यादा खराब हो गई। अफ्रीका के अन्य हिस्सों में भी पशुपालक समुदाय इसी तरह की स्थितियों का सामना कर रहे थे।

चित्र 10.12 : सोने की खदान में

खनिज क्रान्ति एवं अफ्रीका : सन् 1867 में वर्तमान दक्षिण अफ्रीका में हीरे की पहली खान मिली और सन् 1886 में सोने की खानों का पता चला। पता चलते ही हजारों गोरे लोग अपनी तकदीर आजमाने इस इलाके में आकर बसने लगे। हीरे का पता चलते ही इस भू–भाग में सदियों से रहने वाले आदिवासियों एवं पहले से रह रहे बोअर समुदाय की जमीन पर ब्रिटिश शासन ने कब्जा कर लिया। बोअर अफ्रीका में रहने वाले डच किसानों को कहा जाता है जो 17वीं सदी से यहाँ बसे थे।

हीरे की खानों से हीरा निकालने के कार्य में बहुत से मजदूरों की आवश्यकता थी। उस समय तक अफ्रीका में रहने वाले आदिवासी मजदूरी जैसी व्यवस्था में नहीं ढले थे और मुख्यतः खेती या पशुपालन के जरिये अपना भरण पोषण करते थे। इन आदिवासियों को मजदूर के रूप में काम करने हेतु विवश करने के लिए औपनिवेशिक शासन ने उन पर "गृह कर" लगाया। इस कर के लिए पैसे कमाने के लिए एक वयस्क को लगभग तीन महीने मजदूर को

काम करना पड़ता था। फलतः स्थानीय आबादी की एक बहुत बड़ी संख्या अपनी खेती बाड़ी छोड़ कर इन खानों में काम करने लगी।

अब हीरे और सोने की खानों के आसपास मजदूरों की एक बड़ी संख्या निवास करने लगी। इन मजदूरों के अलावा एक बड़ी संख्या में यूरोपीय आबादी भी रहती थी जो मुख्यतः इन खानों के प्रबंधन और विक्रय संबंधी कार्यों में लगी रहती थी। इन सबके कारण दक्षिण अफ्रीका में नगरों का विकास हुआ। सोने की खानों के साथ विकसित हुआ एक ऐसा ही नगर जोहान्सबर्ग है जो आज भी दक्षिण अफ्रीका का सबसे बड़ा शहर है। इन शहरों में यूरोपीय आबादी और अफ्रीकी आबादी के लिए अलग–अलग बसाहट बनाई गई ओर भिन्न–भिन्न नियम बनाए गए। अफ्रीकी लोगों के साथ भेदभाव करने वाली रंग भेद नीति में इन नगरों की अलग अलग व्यवस्था का भी योगदान माना जाता है।

कांगो में रबड़ की खेती और स्थानीय समुदायों का नरसंहार

बेल्जियम का शासक लियोपोल्ड द्वितीय अफ्रीका में अपनी निजी जागीर बनाना चाहता था। उसने सन् 1879–1882 में कांगो के जनजातीय सरदारों से छलकर कई संधियाँ की जिनके आधार पर उसने कांगों में 23 लाख वर्ग किलोमीटर भू–भाग पर कब्जा कर लिया। यह बेल्जियम से करीब 80 गुना ज्यादा बड़ा क्षेत्र था। यह उसकी निजी संपत्ति थी।

लियोपोल्ड ने आदेश दिया कि कांगो के सब लोग जंगलों से रबड़, हाथी दाँत आदि लाकर सरकार को निर्धारित कीमतों पर देंगे जो अपने हिस्से का रबड़ नहीं देगा उसे मार डालने या हाथ काटने के आदेश थे। लोगों से राजा के लिए सामान एकत्र करने का ठेका कई कंपनियों को दिया गया था। इन कंपनियों ने वहाँ के मूल निवासियों के साथ क्रूरता की एक नई मिसाल कायम कर दी। अगर कोई स्थानीय व्यक्ति निश्चित मात्रा में रबड़ नहीं ला पाता था तो वे उनका हाथ काट लेते थे। माना जाता है कि कम–से–कम 100 लाख कांगोवासी इस अत्याचार के कारण मारे गए। अन्ततः इस व्यवस्था को सन् 1908 में समाप्त किया गया और कांगो का शासन बेल्जियम के संसद ने अपने हाथों में ले लिया।

चित्र 10.13 : कांगो के हाथ कटे बच्चे और महिलाएँ

10.3.4 उपनिवेशवाद और अफ्रीकी प्रतिरोध

अफ्रीका के निवासियों ने अपने सीमित साधनों के बावजूद यूरोपीय शक्तियों का भरपूर प्रतिरोध किया, लेकिन उनके ज्यादातर प्रतिरोध अंततः असफल रहे। ब्रिटिश पत्रकार एडवर्ड मोरेल ने कुछ समय अफ्रीका में बिताया था और अफ्रीका पर एक किताब लिखी थी– 'The Blackman's burden'। उसमें उन्होंने अफ्रीकी लोगों के प्रतिरोध की असहाय स्थिति को इन शब्दों में लिखा है–

> **"जो अन्याय और दुर्व्यवहार एक अफ्रीकी अपने जीवन में सहता है उसका विरोध किसी भी अफ्रीकन के द्वारा अफ्रीका में कहीं भी संभव नहीं है। अफ्रीकी मूल के निवासी यूरोपीय श्वेत नस्ल के पूँजीवादी शोषण, साम्राज्यवाद और सैन्यवाद के सामने बिलकुल असहाय हैं।"**

क्या आप एडवर्ड मोरेल के विचार से सहमत हैं कि अफ्रीकी लोग यूरोपीय शक्तियों के आगे लाचार थे?

माजी–माजी विद्रोह

पूर्वी अफ्रीका में जर्मनी का नियंत्रण था। जर्मन शासन इस क्षेत्र के लोगों को खाद्यान्न के स्थान पर नकदी फसल कपास की खेती करने के लिए जबरदस्ती कर रहे थे। यह कपास मुख्यतः जर्मनी के कारखानों के लिए जरूरी था। सन् 1905 में एकाएक अफवाह फैली कि जादुई पवित्र जल को अगर शरीर पर छिड़क दिया जाए तो जर्मन गोलियाँ पानी बन जाएँगी। लगभग 20 आदिवासी समुदाय के लोग जर्मन हुकूमत से लड़ने के लिए एक हो गए। उनका विश्वास था कि उनके भगवान ने उन्हें इस लड़ाई के लिए आदेश दिया है और उनके पूर्वज इस युद्ध में उनकी रक्षा करेंगे। यह विद्रोह 'माजी–माजी विद्रोह' के नाम से जाना जाता है, किन्तु जब इन विद्रोही सैनिकों ने अपने भालों के साथ जर्मन सैन्य ठिकाने पर हमला किया तो जर्मन मशीनगन से करीब 75,000 आदिवासी मारे गए। इसके बाद आए अकाल में लगभग इससे दुगुने लोग और मारे गए।

इथियोपिया का सफल प्रतिरोध

इथियोपिया एकमात्र अफ्रीकी देश था जिसने सफलतापूर्वक यूरोपीय देशों का प्रतिरोध किया। सन् 1889 में मेनेलिक इथियोपिया का शासक बना। उस समय बर्लिन सम्मेलन के बाद ब्रिटिश, फ्रेंच एवं इटालियन लोग सभी इथियोपिया को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने की कोशिश कर रहे थे। मेनेलिक ने बड़ी चालाकी से इनको एक दूसरे के खिलाफ उपयोग किया। इन सबके बीच उसने फ्रांस और रूस से भारी मात्रा में गोला बारूद और बंदूकें खरीद रखी थीं।

सन् 1889 में इटली ने मेनेलिक के साथ एक संधि की संधि के लिए जो दस्तावेज बनाए गए थे वे इथियोपिया और इटालियन भाषाओं में अलग–अलग थे। संधि के अनुसार इथियोपिया का एक छोटा हिस्सा इटली को देना था। लेकिन इटली ने पूरे इथियोपिया को अपने संरक्षण में लेने का दावा किया था। इसी बीच में इटली की सेना उत्तरी इथियोपिया में आगे बढ़ने लगी। फलतः मेनेलिक ने इटली के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। सन् 1896 में हुए 'अडोवा की लड़ाई' में इथियोपिया की सेना ने इटली की सेना को हराकर नया इतिहास बनाया।

अफ्रीका के राजनैतिक मानचित्र में अलग–अलग देशों की सीमाओं को ध्यान से देखें। कई स्थानों पर यह एकदम सीधी रेखा की तरह दिखती है। क्या आप कोई कारण बता सकते हैं कि अफ्रीका में सीमा रेखाएँ इतनी सीधी क्यों हैं?

इस पाठ में हमने पढ़ा कि सन् 1850 तक अफ्रीका में किसी राष्ट्र राज्य का अस्तित्व नहीं था। लेकिन सन् 1913 में हमें पूरा अफ्रीका अलग–अलग देशों में विभाजित दिखता है। मात्र 63 सालों में अफ्रीका में इतने सारे देश कैसे बने?

नस्लवाद का सिद्धान्त क्या है? आज पूरी दुनिया में नस्लीय भेदभाव को कानूनी रूप से गलत माना जाता है। आपके अनुसार नस्लवाद के सिद्धान्त में क्या गलत है?

माजी–माजी विद्रोह क्यों असफल रहा? इथियोपिया के लोग प्रतिरोध करने में क्यों सफल रहे?

क्या आपको लगता है कि यूरोप के देशों द्वारा अफ्रीका का बँटवारा सही था या गलत? अपने उत्तर के पक्ष मे तर्क दें।

इथियोपिया की इटली पर विजय से यूरोपीय वर्चस्व पर क्या कोई असर पड़ा होगा?

10.4 भारत में उपनिवेशवाद सन् 1756–1900

हमने कक्षा 8वीं में पढ़ा है कि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1757 में बंगाल के नवाब को प्लासी की लड़ाई में हराकर भारतीय उपमहाद्वीप पर ब्रिटिश साम्राज्य की शुरुआत की थी और इसके बाद किस तरह धीरे–धीरे पूरा भारत उनके अधीन हो गया। इस पाठ में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने भारत के समाज को प्रभावित किया।

सन् 1757 के बाद भारत का औपनिवेशीकरण कई चरणों से गुजरा। प्रत्येक चरण का स्वरूप ब्रिटेन की बदलती जरूरत तथा भारतीयों के प्रतिरोध से निर्धारित हुआ। एक ओर औपनिवेशिक नीतियों के कारण भारत एक संपन्न देश से गरीब देश बना। दूसरी ओर भारत के लोग अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए एक आधुनिक राष्ट्र का निर्माण कर पाए और उसे लोकतंत्र और समानता की ओर ले जा पाए। हमने भारतीय राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समानता के लिए संघर्ष की कहानी पढ़ी। यहाँ हम औपनिवेशिक नीतियों और उनके प्रभाव के बारे में पढ़ेंगे।

10.4.1 एकाधिकारी व्यापार का दौर

शुरुआती दौर में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के भारत में दो लक्ष्य थे। पहला लक्ष्य था भारत के साथ व्यापार में एकाधिकार स्थापित करना। ईस्ट इंडिया कंपनी यह सुनिश्चित करना चाहती थी कि वही विदेशों में भारतीय माल को बेचे ताकि कम–से–कम दाम में भारतीय किसान व कारीगरों से सामान खरीद कर अधिक से अधिक दाम में दुनियाभर में बेच सके।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय व्यापार व हस्तशिल्प के उत्पादन पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया। पहले से व्यापार में लगे भारतीय व्यापारियों को या तो व्यापार से ही हटा दिया या फिर ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन व्यापार करने को विवश किया गया। भारतीय शिल्पियों एवं बुनकरों को अपना माल कम कीमत पर ब्रिटिश कंपनी को बेचने के लिए विवश किया गया। इन सबके कारण भारत का विदेशों से व्यापार तो काफी बढ़ा लेकिन बुनकर एवं शिल्पियों को उचित कीमत नहीं मिली।

दूसरा लक्ष्य था भारत से प्राप्त राजस्व पर नियंत्रण कर उसे ब्रिटेन के हित में उपयोग करना। ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में तथा संपूर्ण एशिया व अफ्रीका में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए युद्ध करना पड़ता था। इसके लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती थी। इसे भारत से प्राप्त राजस्व से ही निकालने की कोशिश हुई। ज्यादा राजस्व के लिए ज्यादा भू–भाग पर नियंत्रण जरूरी था। इसके लिए भारत के विभिन्न भागों को जीत कर ब्रिटिश भारत में मिलाने की कोशिश हुई।

जो इलाके कंपनी के अधीन हुए वहाँ पर कंपनी ने नई प्रकार की भूराजस्व व्यवस्था लागू की जिसके तहत जमींदार जमीन के मालिक बने और जमीन पर निजी स्वामित्व स्थापित हुआ। अंग्रेजों की उम्मीद थी कि इससे उन्हें अधिकतम भूराजस्व मिलेगा। इस नीति का दूरगामी असर यह पड़ा कि किसानों की स्थिति लगातार बिगड़ती गई और वे अभूतपूर्व मानव निर्मित अकालों के शिकार होने लगे। वे बढ़ते हुए राजस्व को अदा करने के लिए ऋण लेकर साहूकार के चंगुल में फंसते गए।

10.4.2 दूसरा दौर – इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति और भारत का उपनिवेशीकरण

सन् 1750–1800 में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति शुरु हो रही थी। एकाधिकारी व्यापार व्यवस्था उद्योगपतियों के हितों के अनुकूल नहीं थी। वे नहीं चाहते थे कि भारतीय कपड़े यूरोप में बिकें। उल्टा वे चाहते थे कि भारत उनके कारखानों में निर्मित कपड़े खरीदे। उन्होंने दबाव डाला कि भारत पर ईस्ट इंडिया कंपनी (जो महज व्यापारियों का एक समूह था) का नियंत्रण समाप्त हो। धीरे–धीरे ब्रिटेन की संसद ने भारतीय मामलों पर दखल बढ़ाया और ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को सन् 1813 में समाप्त कर दिया। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद संसद ने भारत का प्रशासन सीधे अपने हाथों में ले लिया।

भारत की व्यापारिक नीतियों में बहुत सारे बदलाव किए गए। ब्रिटेन से आने वाले सामानों पर आयात शुल्क को या तो कम किया गया या फिर समाप्त कर दिया गया ताकि भारत में अंग्रेजी कारखानों में बना सामान बिक सके। हमने पिछले अध्याय में इसके बारे में पढ़ा और इन नीतियों का भारतीय बुनकरों पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी विचार किया।

लाखों जुलाहे जो कल तक कपड़ा बनाने के काम में लगे हुए थे, बेरोजगार हो गए और कोई काम–धंधा नहीं मिलने पर वे सभी खेती करने लगे। इससे कृषि पर आबादी का दबाव बढ़ने लगा। उतनी ही जमीन पर अधिक लोग निर्भर हो गए। इस पूरी प्रक्रिया को 'भारत का निरूद्योगीकरण' कहा जाता है। इससे हिंदुस्तान गरीब देशों की श्रेणी में आ गया।

भारत के गरीब होने के पीछे एक और कारण था विभिन्न तरीकों से अंग्रेजों द्वारा भारत से धन इंगलैंड भेजा जाना। भारतीय राजाओं के खजानों की लूट, अंग्रेजी सैनिकों व अफसरों के वेतन आदि के रूप में भारतीय धन इंगलैंड भेजा गया। ये भुगतान भारत के किसानों के द्वारा चुकाये गए करों से होता था।

औद्योगीकरण के लिए नील, कपास, पटसन जैसे कच्चे माल और अनाज, चाय और शक्कर जैसी कृषि उपज की अधिक जरूरत थी। इन्हें सस्ते में खरीदकर वे ब्रिटेन भेजना चाहते थे। औपनिवेशी सरकार ने किसानों पर दबाव डाला कि वे इन्हें व्यापारिक फसलों के रूप में उगाएँ और बेचें। चूँकि किसानों को लगान चुकाना था, वे विवश थे। व्यापारिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने अनेक सिंचाई परियोजनाओं को अंजाम दिया जिससे खेती के लिए पर्याप्त पानी मिल सके। साथ–साथ उसने देश के प्रमुख कृषि क्षेत्रों को बंदरगाहों से जोड़ने के लिए रेल लाईनें बिछायी। भारत में रेलवे के विकास के लिए अधिकांश सामान इंग्लैंड से खरीदा गया। इस कारण वहाँ के लोहा उद्योग को काफी फायदा हुआ। इस प्रकार भारतीय कृषि को ब्रिटिश उद्योगों की जरूरत के अनुसार ढाला गया। नकदी फसल का उत्पादन बढ़ा और कपड़ों की जगह उनका निर्यात होने लगा।

वाणिज्यिक खेती के विकास का आम जीवन पर क्या असर हुआ होगा?

10.4.3 वैचारिक औपनिवेशीकरण

ऊपर हमने देश की अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशी नीतियों के प्रभाव को देखा। लेकिन औपनिवेशीकरण इससे और आगे लोगों की सोच पर हावी होने का प्रयास करता है। यह कैसे? एक उदाहरण की मदद से समझेंगे।

जब अंग्रेजों ने भारत में अपना स्थान राज्य स्थापित किया तो उनमें से कई लोगों ने भारतीयों की संस्कृति, इतिहास आदि को जानने–समझने का भरसक प्रयास किया। वे भारतीय संस्कृति और धर्म आदि से काफी प्रभावित भी हुए। उन्होंने कंपनी सरकार से आग्रह किया कि पारंपरिक भारतीय ज्ञान और साहित्य के अध्ययन को संरक्षण देना जरूरी है। उनके कहने पर संस्कृत कॉलेज और मदरसे खोले गए। इस विचार के लोगों को प्राच्यवादी कहते हैं – प्राच्य यानी पूर्व। अर्थात् वे लोग जो पूर्वी संस्कृति से प्रेरित थे।

सन् 1800 के बाद कंपनी के कई और अधिकारी हुए जिन्होंने यह माना कि आधुनिक यूरोप का ज्ञान ही जानने योग्य है और यह अंग्रेजी के माध्यम से ही हो सकता है। उनका मानना था कि भारतीय ज्ञान की परंपरा किसी काम की नहीं है और उस पर धन खर्च करना व्यर्थ है। इन्हें 'आँग्लवादी' अर्थात् अंग्रेजी संस्कृति और शिक्षा से प्रेरित लोग कहते हैं।

जब अंग्रेजी सरकार की शिक्षा नीति बनी तब आँग्लवादी विचार के लोग अधिक प्रभावी रहे। इनमें सबसे प्रसिद्ध थे थॉमस मैकाले जिन्होंने सन् 1830 में अपनी सिफारिश प्रस्तुत की। मैकाले का कहना था–

''इस बात को सभी मानते हैं कि भारत और अरब के सम्पूर्ण देशी साहित्य एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की केवल एक शेल्फ के बराबर ही हैं।'' यूरोपीय काव्य, इतिहास, विज्ञान और दर्शन की पुस्तकों की तुलना में इनमें कुछ भी नहीं है। उसका आग्रह था कि भारतीयों की भलाई इसी में है कि उन्हें विज्ञान, गणित, पाश्चात्य दर्शन आदि की शिक्षा दी जाए ताकि वे अन्धविश्वास और बर्बरता से मुक्त हो पाएँ।

मैकाले का आग्रह था कि कुछ चुने गए भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा दी जाना चहिए ताकि वे अंग्रेजी शासन के समर्थक बनें और अन्य भारतीयों को भी सिखाएँ। उन्होंने ने कहा–

''हमें सर्वाधिक प्रयास एक ऐसे वर्ग के निर्माण के लिए करना चाहिए जो हमारे और हमारी बहुसंख्यक प्रजा के बीच अनुवादक के रूप में काम करें। ऐसा वर्ग जो खून और रंग में भारतीय हो मगर रुचि, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि में अँग्रेज़ हो। यह वर्ग अपनी स्थानीय भाषाओं को परिष्कृत करके उसे आधुनिक विचार व विज्ञान का वाहक बनाए और उसके माध्यम से अपने देशवासियों को भी शिक्षित करे।''

इस तरह के विचार औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के आधार बने। आप सोच सकते हैं कि इसका शिक्षित लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

औपनिवेशीकरण – एक तुलनात्मक अध्ययन

हमने देखा कि लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, इंडोनेशिया, चीन, भारत आदि अलग–अलग प्रकार से औपनिवेशीकरण से प्रभावित हुए। एक तरह का औपनिवेशीकरण लैटिन अमेरिका में देखा जा सकता है। लैटिन अमेरिका में रहने वाले अधिकांश मूल निवासी मारे गए और वहाँ यूरोप के लोग आकर बसे तथा अफ्रीका से लोगों को दास बनाकर जबरदस्ती वहाँ बसाया गया। यूरोपीय देश इस तरह बसाए गए उपनिवेशों का अपने फायदे के लिए शोषण करना चाहते थे। इसका उपनिवेश के लोगों ने विरोध किया। दास प्रथा, बेगारी और औपनिवेशिक नीतियों के विरोध में स्वतंत्रता आंदोलन सफल रहे। एशियाई देश जैसे– इंडोनेशिया व भारत में औपनिवेशीकरण लैटिन अमेरिका से भिन्न था। यहाँ यूरोप के देशों ने अपना राज्य स्थापित किया और स्थानीय अर्थव्यवस्था को अपने हितों के अनुरूप बदला किन्तु इंडोनेशिया और भारत में भी फर्क था। इंडोनेशिया में जंगल काटकर बागान बनाए गए जिनके मालिक हालैंड के लोग थे। भारत में भी पहाड़ी क्षेत्रों में इस तरह के बागान बने लेकिन बाकी क्षेत्रों में लगान और व्यापारिक खेती के माध्यम से किसानों का शोषण किया गया। सबसे महत्वपूर्ण भारत के उद्योगों को पनपने नहीं दिया गया जिससे भारतीय कपड़ा उद्योगों का विनाश हुआ। चीन की कहानी इन सबसे अलग रही। वहाँ शासक तो चीनी ही बने रहे मगर चीन के विभिन्न हिस्सों पर यूरोपीय देशों का वर्चस्व था जहाँ वे शासन की जिम्मेदारी के बिना वहाँ के लोगों तथा संसाधनों का दोहन करते रहे। इन सब देशों में औपनिवेशीकरण के प्रतिरोध की कहानी भी भिन्न है। हम खुद लैटिन अमेरिका, चीन, भारत और अफ्रीका के प्रतिरोध की तुलना कर सकते हैं।

औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में स्थानीय लोगों की भागीदारी किस प्रकार होती थी? दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में स्थानीय आबादी के संदर्भ में बताएँ।

स्थानीय आबादी के साथ यूरोपीय शक्तियों ने किस प्रकार व्यवहार किया? कांगो, स्पेनी मेक्सिको और इन्डोनेशिया के संदर्भ में बताएँ।

औपनिवेशिक प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों और मानव श्रम का शोषण किस प्रकार हुआ? दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका की खानों के संदर्भ में उत्तर दें।

औद्योगिक क्रान्ति से पहले और उसके पश्चात उपनिवेशों के शोषण के तरीकों में क्या अंतर आया? दक्षिण अमेरिका और भारत के संदर्भ में बताएँ।

खेती के वाणिज्यीकरण एवं खेती में पूँजी निवेश में क्या अंतर है? इन्डोनेशिया और भारत के संदर्भ में बताएँ।

अभ्यास

1. निम्नलिखित घटनाक्रम को समय के सापेक्ष क्रम में जमाइए – कोलंबस द्वारा वेस्टइंडीज पहुँचना, इंका साम्राज्य का नष्ट होना, एजटेक साम्राज्य का नष्ट होना, हैती का विद्रोह।

2. सुमेलित करें –

हेर्नण्डो कोर्टेस	एजटेक साम्राज्य पर कब्जा
तोसां ले ओवरचुर	कांगो का नरसंहार
लियोपोल्ड	हैती विद्रोह
मैकाले	कोलम्बिया और वेनेजुएला की स्वतंत्रता
फ्रांसिस पिजारो	इंका साम्राज्य पर कब्जा
जोस मार्टिन	भारत की शिक्षा नीति
सीमोन बॉलिवार	अर्जेंटिना की स्वतन्त्रता

3. लैटिन अमेरिका में स्पेनी कब्जेदारी के बाद किस तरह की सामाजिक संरचना का विकास हुआ?
4. फ्रांस की क्रांति का लैटिन अमेरिका के स्वतन्त्रता संघर्ष पर क्या प्रभाव पड़ा?
5. स्पेन शासित अमेरिका में तीन जन समूह रह रहे थे– स्पेन के आए लोग जो शासक एवं सामान्य किसान थे, वहाँ के मूल निवासी एवं अफ्रीकी दास। क्या औपनिवेशिक शासन में इन तीनों जन समूहों के अधिकारों मे अंतर थे?
6. खेती के वाणिज्यीकरण से आप क्या समझते हैं? भारत में किन कारणों से खेती का वाणिज्यीकरण हुआ था?
7. भारत में वाणिज्यिक एकाधिकार का बुनकरों पर क्या प्रभाव पड़ा?
8. एक ओर यूरोप में स्वतंत्रता, समानता व लोकतंत्र के सिद्धांत लोकप्रिय हो रहे थे और दूसरी ओर यूरोप के ही लोग उपनिवेशों में अमानवीय व्यवहार कर रहे थे। इस विरोधाभास के बारे में विचार करें कि यह कैसे संभव हो पाया होगा?

Y16XGX

**